# क्षमादान

विष्णु प्रभाकर

# क्षमादान

विष्णु प्रभाकर

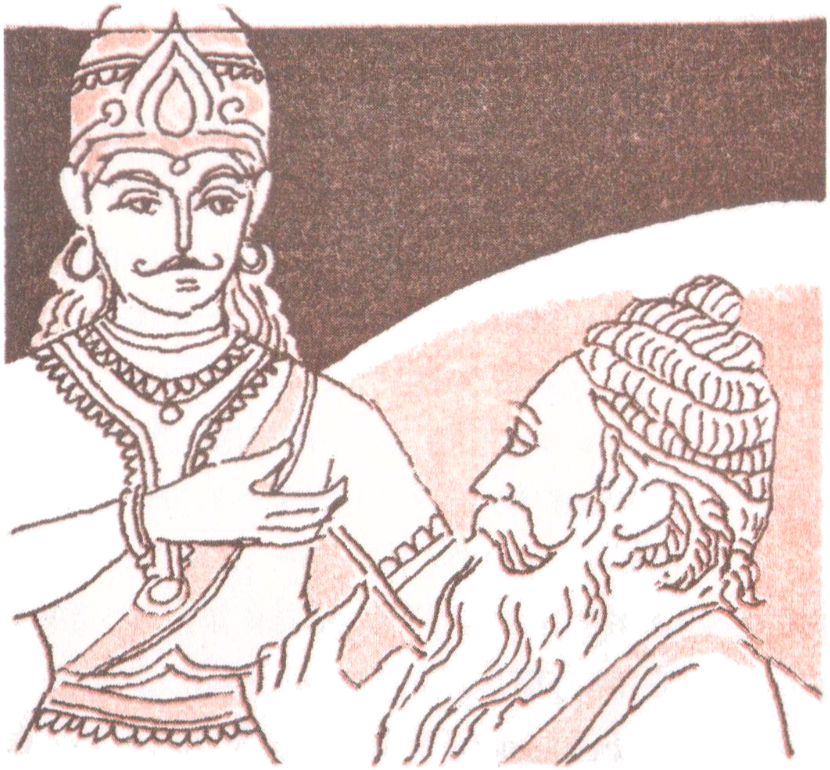

राजपाल

**मूल्य : तीस रुपये (Rs. 30.00)**
संस्करण : 2008 © विष्णु प्रभाकर
ISBN : 978-81-7028-474-1
KSHAMADAAN (Story) by Vishnu Prabhakar

**राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006**
Website: www.rajpalsons.com
E-mail : mail@rajpalsons.com

# दो शब्द

प्यारे बच्चो, ये कहानियाँ छोटे बच्चों के लिए नहीं है। बारह वर्ष और उससे अधिक आयु के बच्चों के लिए यानी किशोरों के लिए हैं। यह सभी कहानियाँ हमने प्राचीन साहित्य, धार्मिक और लोक साहित्य में से चुनकर पाँच संग्रहों में संकलित की हैं। एक कहानी ऐतिहासिक युग की भी है। ये सब कहानियाँ हमें हमारी संस्कृति से परिचित कराती हैं। मनुष्य को कैसे रहना चाहिए। उसके कर्तव्य क्या हैं, इन बातों का हमें अपने जीवन को जीने की राह दिखाता है। 'ब्राह्मण कौन है, हमें क्रोध नहीं करना चाहिए, और ज्ञान का सही अर्थ क्या है।' ऐसे सभी प्रश्नों के उत्तर इन कहानियों के द्वारा समझाए गए हैं। जब तुम इन्हें पढ़ोगे तो तुम्हें पता लगेगा।

कई कहानियाँ बड़ी अनोखी हैं। पढ़ना शुरू करोगे तो समझ नहीं पाओगे, लेकिन अन्त में कहानीकार जब उन वाक्यों का सही अर्थ बताता है तब पता लगता है कि कितनी सही बात कही गई है। जैसे एक कहानी है, 'धर्म का रहस्य।'

एक दिन एक परिवार में एक कम आयु के मुनि भिक्षा माँगने के लिए गए। उन्हें देखकर घर की बहू ने कहा ''मुनिवर अभी तो सबेरा है।''

मुनि ने उत्तर दिया, ''बहन मुझे काल का पता नहीं

चलता।''

फिर मुनि ने पूछा, ''तुम्हारा पुत्र कितने वर्ष का है।''

बहू ने उत्तर दिया, ''सोलह वर्ष का।''

मुनि ने पूछा, ''तुम्हारे पति की आयु क्या है?''

बहू ने उत्तर दिया, ''आठ वर्ष।''

मुनि ने पूछा, ''और ससुर।''

बहू बोली, ''वह तो अभी पालने में ही झूल रहे हैं।''

और भी ऐसे ही प्रश्न पूछे, मुनि ने। बहू के ससुर सब कुछ सुन रहे थे। बड़ा क्रोध आया उन्हें घर की इज्जत ख़ाक में मिला रही है। जब मुनि भिक्षा लेकर चले गए तो वृद्ध पुरुष ने बहू को खूब डांटा। बहू ने शांत भाव से कहा, ''आप मुझे डाँटे यह आपको शोभा नहीं देता, पिताजी। मैं मुनि के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देती। आप उनके गुरु के पास जाइए और उनसे कहिए कि वह मुनि फिर इधर न आवे।''

वृद्ध पुरुष को यह बात जँच गई। वह ऐसे मुनियों को डाँटना भी चाहते थे। इसलिए वह तुरन्त उसके गुरु के पास पहुँचे। उनसे मुनि की शिकायत की। गुरुजी ने उन मुनि को बुला भेजा। मुनि ने सब बातें सुनकर पूछा, ''गुरुजी भला इनसे पूछिए, मैंने कौन-सी अशोभनीय बातें कीं।''

वृद्ध बोले, ''मेरी पुत्रवधू ने इससे कहा, अभी तो सवेरा ही है। इसने उत्तर दिया, 'मैंने काल को नहीं जाना।' भला क्या यह बात सच हो सकती है।'

शिशु मुनि बोले, ''जी, बहन ने मुझसे पूछा था, ''आपने इस उभरती उम्र में संन्यास का कठोर मार्ग क्यों ग्रहण किया।'' मैंने उत्तर दिया, 'बहन काल अर्थात् मृत्यु का तो कोई भरोसा नहीं।' 'गुरुदेव इसमें तो कोई अशिष्ट बात नहीं है।'

वृद्ध ने कहा, ''अच्छा इसे भी छोड़िए, मेरी पुत्रवधू ने अपने पुत्र की आयु सोलह वर्ष, पति की आयु आठ वर्ष और मुझ वृद्ध पुरुष को पालने में झूलने वाला ही बताया था, भला यह बात सही कैसे हो सकती है?''

शिशु मुनि ने उत्तर दिया, ''गुरुदेव मैंने बहन से पूछा था कि तुम्हारे घर में कोई 'धर्मज्ञ' है या नहीं, इस पर उसने उत्तर दिया। 'मेरा पुत्र जन्म से ही धर्म-कर्म जानता है और उसकी आयु सोलह वर्ष है। मेरे पति पहले तो परम नास्तिक थे, किन्तु अब मेरे समझाने-बुझाने से धर्म के मर्म को समझने लगे हैं। और आठ वर्ष से वह भी धर्मनिष्ठ हैं, लेकिन मेरे ससुर आज भी धर्म की बात सुनना नहीं चाहते।'' यह वृद्ध पुरुष धर्म का रहस्य जानते तो आपके पास आते ही नहीं।

''यह सुनकर वृद्ध पुरुष लज्जित हुए। वह अब धर्म के रहस्य और शक्ति को समझ गए थे।''

है ना यह कहानी पहेलियों जैसी, तो इन कहानियों के नाना रूप हैं। वह सब प्राचीन काल की संस्कृति पर प्रकाश डालती हैं।

इन कहानियों की पुस्तकों के साथ-साथ एक और पुस्तक है, 'तपोवन की कहानियाँ' ये कहानियाँ दूसरी कहानियों से अलग हैं। यह प्राचीन काल के परम विद्वान महर्षियों की कहानियाँ हैं। उनके तप, त्याग और साधना पर प्रकाश डालती हैं। ये महर्षि आश्रमों और मठों में रहते थे। कुछ ऐसे आश्रम और मठ बन गए थे कि जो भी महर्षि उस गद्दी पर बैठता, वह उसी नाम से जाना जाता था। जैसे आज शंकराचार्य जी की गद्दी है। जो व्यक्ति उस पर बैठेगा, वह शंकराचार्य के नाम से ही जाना जाएगा। प्राचीन काल में भी ऐसी ही गद्दियाँ थीं

या आश्रम थे। जैसे अगस्त्त मुनि, वशिष्ठ जी और ऋषि विश्वामित्र आदि। अगस्त्त मुनि का आश्रम हिमालय में ही माना जाता है, विन्ध्यांचल पर्वत पर भी, तमिल प्रदेश में भी। और यहाँ तक कि भारत के बाहर इण्डोनेशिया में भी। अब एक ही व्यक्ति प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक कैसे रह सकता है। वशिष्ठ जी और विश्वामित्रजी राजा हरिशचंद्र के समय में भी हुए हैं और राम के समय में भी। तो यह शंकराचार्य के समान गद्दियाँ थीं, जो इन पर बैठता वह इसी नाम से पुकारा जाता था।

यह सब बातें तो तुम बड़े होकर ठीक-ठीक समझोगे, अभी तो तुम इन्हें पढ़ो और इनका अर्थ समझो। समय बदल गया है। कहानियाँ कहने का ढंग भी बदल गया है। जीवन के मूल्य भी बदल गए हैं, पर अपने प्राचीन साहित्य से परिचित होना भी आवश्यक है।

तभी तो पता लगता है कि समय के साथ-साथ हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-विचार कैसे बदल जाते हैं। यह बदलना होता तो आगे बढ़ने के लिए ही है। इसी बात को तुम्हें समझना है।

विष्णु प्रभाकर

23.1.2004

# क्रम


| | |
|---|---|
| क्षमादान | 9 |
| ईर्ष्या | 14 |
| शील का बल | 18 |
| धन का लोभ | 23 |
| सच्ची प्रशंसा | 28 |
| ज्ञान की विनय | 33 |
| ज्ञान का मान | 37 |

# क्षमादान

किसी समय गोवा और खम्भात के शाह सौदागर राजिया सेठ का व्यापार चारों ओर फैला हुआ था। समुद्र की लहरों पर, बन्दरगाह के किनारों पर उनकी कहानियाँ लिखी हुई थीं। उनका व्यापार मालाबार, अरब, लाल सागर, अफ्रीका के पूर्व भाग और ईरान तक फैला हुआ था। सिंहलद्वीप का व्यापार भी उन्हीं के हाथ में था। लेकिन कुछ दिनों से समुद्री लुटेरों ने उन्हें बहुत परेशान कर रखा था। इस समय राजिया सेठ के छोटे भाई वाजिया सेठ व्यापार का काम देख रहे थे।

एक बार इसी लूटमार के डर के कारण जहाज़ बहुत दिन से बन्दरगाह में ठहरे हुए थे। कच्छ काठियावाड़ के संघार, जत और मेर लोग भी अरब और फिरंगी लुटेरों के साथ मिल गए थे। चिन्तित होकर नाविकों ने सेठ जी से कहा, ''अब क्या होगा ?''

सेठ जी ने उत्तर दिया, ''सब ठीक होगा। गोआ की सरकार सहायता के लिए तैयार है। लेकिन मैंने जान-बूझकर तुम लोगों को नहीं जाने दिया। हमारे पवित्र दिवस समीप हैं। और प्रवास में इन दिनों मार-पीट नहीं होनी चाहिए।''

ये सेठ लोग जैनी थे। और तीसरे दिन ही पर्यूषण पर्व आरम्भ

होने वाला था। पर्व के समाप्त होने के बाद बारहवें दिन उन्होंने जाने का निश्चय किया। लेकिन तभी सहसा उन्होंने देखा कि दूर समुद्र में जहाजों का एक बेड़ा उनकी ओर आ रहा है।

दूसरे ही क्षण सब की दृष्टि उस ओर उठी और वे सहसा पुकार उठे, ''अरे यह तो कप्तान बिजरेल के जहाज हैं।''

कप्तान बिजरेल अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध था। न जाने कितने लुटेरों के उसने छक्के छुड़ाये थे। कितने युद्धों में उसने विजय प्राप्त की थी। घावों से भरा उसका शरीर इसी वीरता का साक्षी था। जब वह किनारे पर पहुँचा तो उसने सेठ जी का अभिवादन किया और कहा, ''सेठ साहब ! खोजगी को पकड़ लाया हूँ। समुद्र के इस पापी को मैंने चुनौती देकर हराया है। गोआ सरकार ने एक लाख रुपये का दण्ड दिया है। यदि दस दिन के भीतर यह दण्ड न चुका देगा, तो इसे सूली पर लटका दिया जाएगा।''

तभी सहसा समुद्र का वह भयंकर डाकू खोजगी सेठ के चरणों में आ गिरा। दया की भीख माँगते हुए उसने प्रतिज्ञा की, ''आज के बाद आपके व्यापार में कभी बाधा नहीं डालूँगा।''

सेठ जी ने कप्तान बिजरेल की ओर देखा और कहा, ''यह दया की याचना करता है। क्या कहते हो ?''

कप्तान ने उत्तर दिया, ''मैं ऐसे लोगों का विश्वास नहीं कर सकता। कल को बदल जाए तो ?''

सेठ जी बोले, ''तो क्या होगा? बिल्ली हमेशा घी नहीं खाती। हम लोगों की शक्ति इससे कहीं बढ़कर है।''

कप्तान ने सेठ जी की ओर देखा। दो क्षण सोचा। वह जानता था कि सेठजी व्यापारी हैं, लेकिन इस समय वह क्षत्रियों की भाषा भी बोल रहे हैं। उसने कहा, ''किन्तु इसका दण्ड

कौन देगा?"

सेठ जी बोले, "जानते हो हमारे पवित्र दिवस समीप हैं।"

कप्तान ने कहा, "जी हाँ। पर्यूषण पर्व के उपलक्ष में आठ दिन तक व्यापार बन्द करने की सरकारी आज्ञा है।"

सेठजी बोले, "हमारे शास्त्रों में लिखा है, पर्व के दिनों में जो दान किया जाता है। उसका पुण्य सौ गुणा होकर मिलता है। एक लाख रुपया हमारे कोष से ले जाओ और सागर के इस लुटेरे को मुक्त कर दो।"

आश्चर्य से चकित होकर सब लोग सेठजी की उदारता और धर्म-परायणता की प्रशंसा करने लगे। कोई कितना ही बड़ा पापी

क्यों न हो, उसके हृदय में भी प्रकाश की एक रेखा छिपी रहती है। सागर का वह बदनाम लुटेरा खोजगी सेठजी की इस उदारता से विचलित हो उठा। प्रकाश की रेखा हज़ार गुनी होकर चमक उठी। उसने लुटेरापन छोड़ दिया और नाविक बन गया। उसके जहाज़ देखते-देखते जावा, सुमात्रा और सिंहलद्वीप से लेकर चीन, और अरबस्तान तक जाने लगे।

ऐसी ही एक यात्रा में एक बार उसके जहाज़ों को सागर के लुटेरों ने घेर लिया। भयंकर जल-युद्ध आरम्भ हो गया। सागर का प्रसिद्ध लुटेरा खोजगी तो भुक्तभोगी था। उसने जमकर युद्ध किया। लुटेरे हार गए और उनके जहाज़ समुद्र में डुबो दिए गए। भागते हुए बाईस लुटेरों को बन्दी बना लिया गया। खोजगी ने आदेश दिया, ''इन सभी को मार कर समुद्र में फेंक दो।''

जेठ का महीना था। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। सन्ध्या के समय जब द्वितीया का चन्द्र उदित हुआ तो जल्लाद लोग लुटेरों को मारने के लिए आए। खोजगी स्वयं वहीं पर उपस्थित था। लेकिन वह उनको मारने का संकेत करे कि एक बूढ़े लुटेरे ने कहा, ''हम मरने से नहीं डरते, किन्तु हम राजिया-वाजिया सेठ की प्रजा हैं। नाव चलाने का काम लगभग नष्ट हो चुका है, इसीलिए हमें डाकू बनना पड़ा। हम आपसे एक बात कहना चाहते हैं।''

खोजगी ने चिल्लाकर कहा, ''शीघ्र कह। मेरी तलवार बहुत देर तक राह नहीं देख सकती।'' बूढ़े डाकू ने निवेदन किया, ''आजकल राजिया-वाजिया सेठ के पर्यूषण पर्व के पवित्र दिन हैं। इस समय हत्यारों को भी क्षमा मिलती है। हम भी क्षमा की प्रार्थना करते हैं।''

कालमूर्ति खोजगी की भृकुटी सहसा ढीली पड़ गईं। उसके

स्मृति-पटल पर कुछ पुराने चित्र उभरने लगे। कई क्षण गम्भीर विचारों में डूबा रहा। फिर बोला, "वाजिया सेठ के पर्व के दिन हैं? अच्छा सबको मुक्त कर दो।"

जो तलवारें सिर काटने के लिए म्यान से बाहर आई थीं वह वापस म्यान में घुस गईं। सभी मुक्त कर दिए गए। खोजगी ने वाजिया सेठ से जो कुछ पाया था, वही तो उसने लौटाया था।

# ईर्ष्या

देवगुरु बृहस्पति के एक भाई थे। नाम था सम्वर्त। वह विद्वान भी थे और सज्जन भी। इसी कारण बृहस्पति उनसे जलते थे, और उन्हें तरह-तरह के कष्ट देते थे। आखिर तंग आकर सम्वर्त घर से भाग गए। उन्हीं दिनों इक्ष्वाकु वंश के राजा मरुत ने एक महायज्ञ करने का आयोजन किया और देवगुरु से यज्ञ कराने की प्रार्थना की। देवगुरु को भय हुआ कि यह यज्ञ करने के बाद राजा मरुत देवराज से अधिक यश प्राप्त कर लेंगे। इसलिए उन्होंने यज्ञ कराने से इन्कार कर दिया। राजा मरुत तब सम्वर्त के पास पहुँचे। पहले तो सम्वर्त ने भाई के भय के कारण यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया, जब राजा ने बहुत आग्रह किया तो राज़ी हो गए।

यह समाचार जब बृहस्पति को मिला तो उनकी ईर्ष्या और भी बढ़ गई। उस आग में वह जलने लगे। उनके देह की कान्ति फीकी पड़ गई। देवराज ने यह देखा तो बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने आचार्य को बुला भेजा और उनका आदर-सत्कार करके बोले, ''आचार्य, आप दुबले क्यों हो रहे हैं ? नींद तो आती है न ? सेवक लोग आपकी सेवा-टहल तो ठीक तरह से कर रहे हैं न? देवता लोग आपका यथोचित आदर तो करते हैं न ?

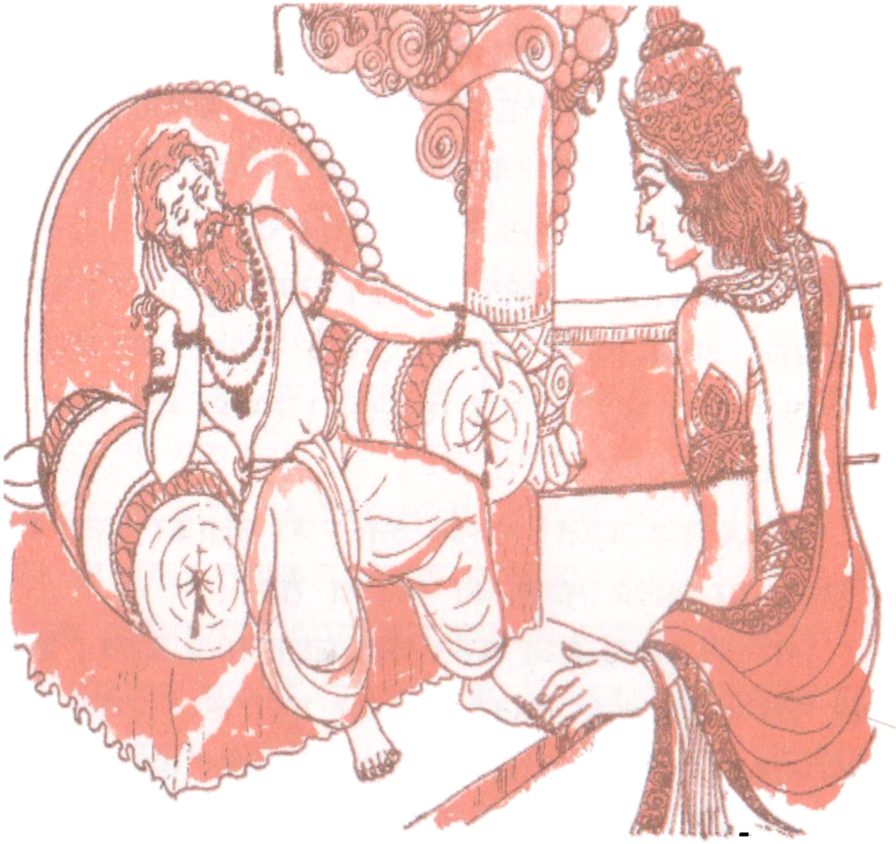

कहीं किसी से कोई अपराध तो नहीं हुआ ?''

बृहस्पति ने उत्तर दिया, ''देवराज ! मैं कोमल शय्या पर बड़े आराम से सोता हूँ। सेवक लोग बड़े प्रेम से टहल-सेवा करते हैं। देवताओं के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया है।...

इतना कहते-कहते देवगुरु का गला भर आया। यह देखकर देवराज भी विचलित हो उठे। बड़े स्नेह से पूछा, ''गुरुदेव, तब वह क्या बात है जो आपको इतना व्यथित कर रही है ? आपका रंग फीका पड़ गया है। आप दुबले हो गए हैं। आप निःसंकोच मुझसे अपने मन की बात कहिए।''

देवराज के बहुत आग्रह करने पर बृहस्पति ने कहा, ''मेरा

भाई सम्वर्त राजा मरुत के महायज्ञ का पुरोहित बना है। यह मुझसे सहन नहीं हो रहा। यही मेरे दुःख का कारण है।''

देवराज ने सुना तो चकित हो गए। वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि जिन देवगुरु को सारी इच्छित वस्तुएँ प्राप्त हैं, वह अपने भाई के इस यश से इतने दुःखी होंगे। उन्होंने देवगुरु को समझाने का प्रयत्न किया। देवगुरु मुस्कराए। बोले, ''देवराज, अपने किसी शत्रु की उन्नति देखकर तुम्हें कितना दुःख होता है। मेरी भी वही स्थिति है। तुमको मेरी सहायता करनी चाहिए।''

देवराज क्या कहते। उन्होंने अग्नि को बुलाकर आज्ञा दी, ''धरती पर जाकर मरुत का महायज्ञ रोको।''

अग्निदेव तुरन्त राजा मरुत की यज्ञशाला में पहुँचे। राजा बड़े प्रसन्न हुए और उनकी यथोचित पूजा की। उसके बाद अग्निदेव ने राजा से कहा, ''हे राजन्, देवराज का आदेश है कि तुम सम्वर्त को पुरोहित पद से हटा दो। यदि तुम चाहोगे तो मैं बृहस्पति को पुरोहिताई करने को राज़ी कर दूँगा।''

सम्वर्त वहीं पर उपस्थिति थे। अग्निदेव की यह बात सुनकर वह बोले, ''आप ऐसी बातें न कहें। मुझे अगर क्रोध आ गया तो मैं आपको अपनी दृष्टि से ही जला कर भस्म कर दूँगा।''

ब्रह्मचर्य की शक्ति अग्नि को भी भस्म कर देती है। इसलिए अग्निदेव भय के मारे काँपने लगे और बिना कुछ कहे वहाँ से वापस देवराज के पास पहुँचे। देवराज ने पहले तो उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया, लेकिन फिर सब कुछ समझ गए और एक गन्धर्व को बुलाकर आज्ञा दी, ''तुम राजा के पास जाओ और उनसे कहो कि यदि उन्होंने सम्वर्त का साथ न छोड़ा तो मैं उनका शत्रु बन जाऊँगा और फिर उनका सर्वनाश निश्चित

है।"

गन्धर्व राजा मरुत के पास पहुँचा और इन्द्र का सन्देश कह सुनाया, लेकिन राजा मरुत इन्द्र की बात स्वीकार नहीं कर सके। बोले, "सम्वर्त मेरे मित्र हैं। मित्र के साथ छल करना घोर पाप है। मैं उनका साथ नहीं छोड़ सकता।"

गन्धर्व ने कहा, "राजन्, जब इन्द्र तुम पर वज्र प्रहार करेंगे तब तुम कैसे बचोगे।"

गन्धर्व इतनी बात पूरी भी न कर पाया था कि आकाश में इन्द्र के वज्र प्रहार की कड़क सुनाई देने लगी। राजा का हृदय दहल उठा। उसने समझा कि इन्द्र ने आक्रमण कर दिया है। वह तुरन्त सम्वर्त की शरण में पहुँचा। सम्वर्त ने राजा को अभय देते हुए कहा, "भय मत करो। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

और तब तपस्वी सम्वर्त ने अपनी तपस्या की शक्ति का इन्द्र पर प्रयोग कर दिया। क्षण भर में क्या से क्या हो गया। वही इन्द्र जो आक्रमण करने आए थे, शान्ति की मूर्ति बन गए। नम्रतापूर्वक वह राजा मरुत के यज्ञ में भाग लेने आए और सानन्द हवि ग्रहण कर वापस लौट गए।

बृहस्पति ने ईर्ष्या के कारण जो दृष्कृत्य किया था उसका यही परिणाम हो सकता था। ब्रह्मचर्य के तेज के सामने कुछ भी नहीं ठहर सकता। ईर्ष्या ऐसा पाप है, जो बड़े से बड़े को भी परेशान करता है। सरस्वती से भी महान देवगुरु बृहस्पति को भी उसने नहीं छोड़ा। बेचारे साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या है।

# शील का बल

प्राचीन काल में एक बार असुरों के राजा प्रह्लाद थे। महर्षि कश्यप की अनेक पत्नियाँ थीं। एक पत्नी का नाम अदिति था। उसके पुत्र इन्द्र आदि देवता थे। भगवान् ने कई बार इन्हीं के पेट से अवतार लिया था।

महर्षि कश्यप की दूसरी पत्नी का नाम दिति था। इसके पुत्र असुर, दैत्य और दानव कहलाए। प्रह्लाद का पिता हिरण्यकश्यप दिति का ही पुत्र था। यह भगवान् का परम शत्रु था। लेकिन प्रह्लाद भगवान का भक्त था। हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को मारने की अनेक बार चेष्टा की लेकिन अन्त में भगवान ने नरसिंह का रूप धारण कर हिरण्यकश्यप को मार डाला और प्रह्लाद को राजगद्दी पर बैठाया।

उनके राज्य में सब प्रकार के सुख थे। इन्हीं राजा प्रह्लाद ने एक बार अपने शील के बल से इन्द्र का राज जीत लिया था। तब इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और अपने गुरु बृहस्पति के पास पहुँचे। पूछा, "गुरुदेव! ऐश्वर्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?"

बृहस्पति ने उत्तर दिया, "ज्ञान के बल पर।"

इन्द्र इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हो सके। बोले, "क्या इससे

बढ़कर भी कोई और मार्ग है ?"

बृहस्पति ने कहा, "मैं तो नहीं जानता, लेकिन तुम असुरों के पुरोहित शुक्राचार्य के पास चले जाओ। शायद वह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे सकें।"

इन्द्र शुक्राचार्य के पास पहुँचे और शुक्राचार्य ने उन्हें राजा प्रह्लाद के पास भेज दिया। इन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर राजा प्रह्लाद के पास पहुँचे और बोले, "हे दानव राज ! मैं आपके पास ऐश्वर्य-प्राप्ति का उपाय पूछने आया हूँ।"

प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "हे ब्राह्मण ! इस समय मेरे पास अवकाश नहीं है। आप यहीं रुकिए। अवकाश मिलने पर मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा।"

इन्द्र वहीं रहने लगे और उनसे शिक्षा पाने लगे। एक दिन इन्द्र ने पूछा, "हे दैत्यराज ! आपने तीनों लोकों का राज्य कैसे पाया ?"

प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "अपने शील और सच्चरित्रता के कारण।"

यह उत्तर पाकर इन्द्र सन्तुष्ट हो गए और बड़े मनोयोग से दैत्यराज को अपना गुरु मानकर उनकी सेवा करने लगे। प्रह्लाद बड़े प्रसन्न हुए। बोले, "हे ब्राह्मण! तुम मेरे पास शिक्षा पाने आए थे, इसलिए मैंने तुम्हारी सेवा स्वीकार की। लेकिन तुम ब्राह्मण हो और ब्राह्मण की सेवा करना राजा का धर्म है। बोलो, तुम्हारी क्या मनोकामना है ? उसे मैं पूरी करूँगा।"

इन्द्र इसी क्षण की राह देख रहे थे। बोले, "महाराज ! आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे सुखी देखना चाहते हैं तो अपना शील मुझे दे दीजिए।"

प्रह्लाद बोले, "तथास्तु।"

लेकिन उन्होंने कह तो दिया पर उनका हृदय भय से काँप उठा था। अब क्या हो सकता था। इन्द्र के जाते ही उनके शरीर से एक तेज निकला। उन्होंने पूछा, "तुम कौन हो ?"

उस तेज ने उत्तर दिया, "दानवराज! मैं शील हूँ। आपने मुझे ब्राह्मण को दे दिया है, सो मैं वहीं जा रहा हूँ।"

शील वहाँ से चला गया और प्रह्लाद की काया शिथिल पड़ गई। थोड़ी देर बार एक और तेज निकला। उसने कहा, "मैं धर्म हूँ। जहाँ शील रहता है, वहीं मैं रहता हूँ। मैं भी ब्राह्मण के शरीर में जा रहा हूँ।"

इसी प्रकार सत्य, सदाचार और बल ये सब ब्राह्मण के शरीर में चले गए, क्योंकि ये भी वहीं रहते हैं जहाँ शील रहता है। अन्त में प्रह्लाद के शरीर से एक परम तेज वाली देवी निकली। प्रह्लाद ने चकित होकर पूछा, "तुम कौन हो देवी ?"

देवी ने उत्तर दिया, "हे राजा प्रह्लाद, मैं लक्ष्मी हूँ। मैं सदा बल के साथ रहती हूँ। बल ब्राह्मण के शरीर में चला गया है। मैं भी उसके पीछे जा रही हूँ।"

प्रह्लाद व्याकुल हो उठे। बोले, "जाने से पहले देवी, मुझे यह तो बता जाओ कि वह ब्राह्मण कौन था ? जो मुझसे शील माँगकर ले गया है।"

लक्ष्मी बोली, "हे धर्मात्मा, ब्राह्मण वेश में वह स्वयं इन्द्र था। अपनी चतुराई से उसने तुम्हारा सर्वस्व छीन लिया है। जिस शील के कारण तुमने तीनों लोकों को जीता उसी को वह ले गया है। धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं सभी शील के अधीन हैं। संसार में वही व्यक्ति सुख और ऐश्वर्य का अधिकारी है,

जिसने अपने शील की रक्षा की है। वही शील अब इन्द्र के पास है।''

लक्ष्मी चली गई और इन्द्र ने शील के वल पर अपना खोया हुआ गौरव फिर प्राप्त कर लिया।

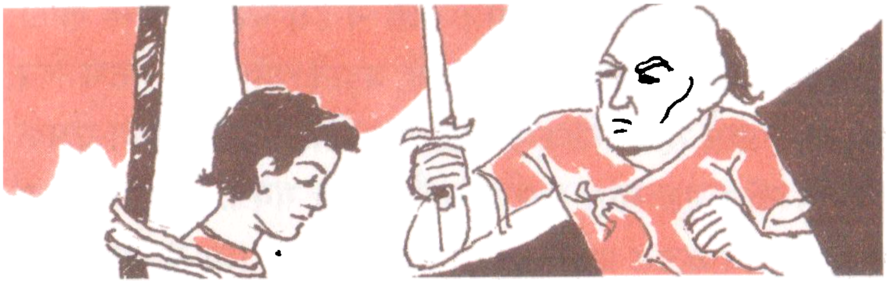

# धन का लोभ

इक्ष्वाकु-मण्डल के अधिपति महाराजा हरिश्चन्द्र बहुत दुःखी रहते थे। सौ रानियों के होते हुए भी उनके घर में एक भी पुत्र नहीं था। सूना राजमहल उन्हें काट खाने को दौड़ता। संयोग की बात है कि एक दिन महर्षि नारद उधर आ निकले। राजा के दुःख का कारण जानकर वह बोले, ''पुत्र-प्राप्ति के लिए वरुण की सच्चे हृदय से प्रार्थना करो। वरुण सर्व-शक्तिमान हैं, सर्वज्ञ हैं। सच्चे हृदय और सरल भाव से की गई प्रार्थना को वह अवश्य स्वीकार करेंगे।''

नारद की आज्ञा मानकर हरिश्चन्द्र ने गद्गद् स्वर में वरुण देव से प्रार्थना की, ''भगवन्, यदि मेरे घर में पुत्र उत्पन्न होगा तो मैं उस पुत्र को ही आपकी सेवा में समर्पित कर दूँगा।''

वरुण ने महाराजा की प्रार्थना स्वीकार की और समय पाकर उनके घर में सब गुणों से सम्पन्न एक पुत्र का जन्म हुआ। सारे राज्य में आनन्द की मस्ती छा गई। तभी सहसा वरुण देव वहाँ आए। राजा से बोले, ''अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार इस बालक को मुझे दे दो।''

राजा ने नम्र भाव से कहा, ''तुरन्त का उत्पन्न बालक यज्ञ के उपयुक्त नहीं होता। आप दस दिन बाद आएँ।''

वरुण दस दिन बाद आए। राजा ने इस बार भी उन्हें लौटा दिया। राजा बार-बार समय आगे बढ़ाते रहे और वरुण देव बार-बार आते रहे। राजकुमार का नाम रोहित रखा गया। उसके दूध के दाँत टूट गए, नए दाँत पैदा हो गए। फिर वह युवा हुआ। उसने कवच धारण किया। इस समय राजा ने अपने पुत्र को सब कुछ बता दिया। कहा, ''वरुण की कृपा से तुम्हारा जन्म हुआ है। अब तुम युवा हो गए हो, पवित्र हो। मैं तुम्हें वरुण को दूँगा।''

रोहित ने ये बातें सुनीं तो चुपचाप वह वहाँ से जंगल की ओर चला गया। धीरे-धीरे बारह महीने बीत गए, पर वह नहीं लौटा। उसके अंग-अंग में वीर रस उमड़ रहा था। वह वरुण के पास नहीं जाना चाहता था। वरुण क्रुद्ध हो उठे और इस क्रोध का परिणाम यह हुआ कि राजा को जलोदर रोग ने आ घेरा। थोड़े दिनों में उनके प्राणों पर आ बनी। जंगल में रोहित ने भी यह समाचार सुना। वह बहुत दुःखी हुआ और घर की ओर लौट पड़ा। लेकिन एक विचित्र पुरुष ने उसे रोक दिया। और दूसरे वर्ष, तीसरे वर्ष, लगातार पाँच वर्ष तक ऐसा ही होता रहा। राजा का रोग बढ़ रहा था। रोहित उनके पास आना चाहता था। लेकिन हर बार वह पुरुष उसे रोक देता था।

ऐसे ही समय एक दिन उसने तीन पुत्रों के साथ एक ऋषि-दम्पति को देखा। अन्न न मिलने के कारण वे सूखकर काँटा हो रहे थे। ब्राह्मण का नाम अजीगर्त था। रोहित को सहसा सूझा—क्यों न इसके एक पुत्र को मैं खरीद लूँ और अपने बदले वरुण को भेंट कर दूँ। बस उसने ऋषि से निवेदन किया कि सौ गाय लेकर वह अपने एक पुत्र को उसे दे दें।

ऋषि ने अपनी पत्नी की ओर देखा और पत्नी ने ऋषि

की ओर। भूखे थे, सो दोनों ही इस प्रस्ताव से सहमत हो गए। लेकिन पिता ने कहा, "मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को नहीं दूँगा।"

माता बोली, "मैं कनिष्ठ पुत्र को नहीं बेच सकती।"

लाचार होकर रोहित ने मझले पुत्र शुनःशेप को ले लिया

और घर लौट आया। राजा पुत्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसकी बातें सुनकर उसने यज्ञ की तैयारी शुरू कर दी। स्वार्थ ने उसे अन्धा कर दिया था। कई दिन तक यज्ञ होता रहा और चन्दन तथा पुष्पमाला से सजा हुआ शुनःशेप अपने मरने की राह देखता रहा। एक दिन वह अवसर आ गया जब

उसे यूप से बाँधा जाने वाला था। ऋषियों का मन डोल उठा। लेकिन उसके पिता अजीगर्त ने अपने प्यारे पुत्र को रस्सियों से जकड़ कर खम्बे से बाँध दिया। बदले में उसे सौ गायें मिलीं। इसके बाद बलि का समय आया। इस बार ऋषि लोग काँप उठे। लेकिन अजीगर्त सौ गायें लेकर अपने ही पुत्र का सिर काटने को तैयार हो गया। जनता काँप उठी–यह कैसा पिता है कि जिस पुत्र को उसने जन्म दिया, उसी को धन के लोभ से मारने को तैयार हो गया है।

तभी शुनःशेप ने ब्राह्मणों से सलाह की और वह परमात्मा की विभूतियों से प्रार्थना करने लगा। वेद-मन्त्रों की ध्वनि से सारा मण्डल गूँज उठा। उस प्रार्थना में इतनी करुणा थी कि सहसा शुनःशेप के शरीर के सब बन्धन टूट गए। वह मुक्त हो गया और देखते-ही-देखते राजा हरिश्चन्द्र का रोग भी दूर हो गया। ऋत्विक लोग बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने शुनःशेप से ही यज्ञ में पूर्णाहुति दिलवाई।

यज्ञ सानन्द समाप्त हो गया। लेकिन अपने पिता के इस व्यवहार से शुनःशेप के हृदय को बहुत ठेस लगी और वह उनको छोड़कर विश्वामित्र की गोदी में जा बैठा। पिता ने कहा, "हे पुत्र ! मेरे रहते तुम विश्वामित्र को अपना पिता कैसे मान सकते हो।"

क्रुद्ध होकर शुनःशेप ने उत्तर दिया, "शूद्र लोग भी अपने पुत्र का वध नहीं करते, लेकिन आपने सौ गायों की कीमत मुझसे अधिक समझी और तलवार से मेरा सिर काटने को तैयार हो गए।"

पिता ने कहा, "मैं बहुत दुःखी हूँ। पश्चात्ताप से मेरा हृदय जल रहा है। यह गायें तुम्हारी हैं।"

पुत्र ने उत्तर दिया, ''सदाचारी एक बार भी भूल करता है तो वह महा-अपराधी होता है। पिता ही जब पुत्र का वध करने को तैयार हो जाए तो उसे कभी क्षमा नहीं किया जा सकता।''

महर्षि विश्वामित्र ने भी शुनःशेप का समर्थन किया। और कहा, ''तुमने भरे समाज में पुत्र को मारने के लिए तलवार उठाई थी। हे धन के लालची ! तुम अब इसके पिता नहीं रहे। यह अब मेरा पुत्र है।''

महर्षि के ऐसे कठोर पर सत्य वचन को सुनकर अजीगर्त का सिर झुक गया और शुनःशेप हमेशा के लिए उससे छिन गया।

# सच्ची प्रशंसा

प्राचीन काल में दम्भोद्भव नाम का एक राजा राज करता था। वह महा-अभिमानी और प्रतापी था। एक बार उसने सारी धरती के राजाओं को युद्ध में पराजित कर डाला। इससे उसका अभिमान इतना बढ़ गया कि वह हर समय अपने पराक्रम की प्रशंसा अपने मुँह से ही करने लगा। तब ब्राह्मणों ने नम्रता से उससे कहा, ''हे राजन्, अपने मुँह से प्रशंसा करना आपको शोभा नहीं देता। सच्ची प्रशंसा वही है जो दूसरे करें।''

यह सुनकर राजा क्रुद्ध हो उठा। बोला, ''हे ब्राह्मणो,! मैंने अपने बाहुबल से सारी पृथ्वी को जीता है। मैं जो कुछ कहता हूँ वह मिथ्या नहीं हो सकता। मैं अजेय हूँ। इन्द्र भी मेरी शक्ति को चुनौती नहीं दे सकता।''

यह सुनकर ब्राह्मणों को भी आवेश आ गया। उन्होंने कहा, ''राजन्, यदि आपको अपनी शक्ति का इतना गर्व है तो इस पृथ्वी पर अभी दो व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें तुम कभी नहीं हरा सकते। उनसे जाकर युद्ध करो।''

चकित होकर राजा ने पूछा, ''वे दोनों वीर किस देश में रहते हैं। बताओ, मैं अभी जाकर उनसे युद्ध करूँगा।''

ब्राह्मणों ने कहा, ''वे दोनों वीर पुरुष गन्धमादन पर्वत पर

तपस्या कर रहे हैं। उनके नाम हैं नर और नारायण।''

बस यह सुनते ही राजा ने अपनी सेना को गन्धमादन पर्वत पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। जिस समय अपनी विशाल सेना को लेकर राजा वहाँ पहुँचा, नर और नारायण कठोर तप कर रहे थे। उनके शरीर सूख गए थे। अस्थियाँ उभर आई थीं। लेकिन मस्तक तेज के कारण चमक रहे थे। राजा ने यह अवस्था देखी तो हँसने लगे, और अभिमान में भरकर सेनापति से कहा, ''वे ब्राह्मण भी कितने मूर्ख थे। ये कंकाल भी कभी युद्ध कर सकते हैं। इनका युद्ध के लिए ललकारना मेरा अपना अपमान है। न इनके शरीर में बल है और न इनके पास सेना ही है।''

सेनापति भी नर-नारायण की ओर देखकर हँसने लगा। फिर दोनों उन तपस्वियों के पास पहुँचे। हाथ जोड़कर उनको प्रणाम

किया। तपस्वियों ने आँखें खोलीं, देखा–सामने सेनापति के साथ राजा खड़े हैं और उनके पीछे दूर-दूर तक सेना फैली पड़ी है। वे मुस्कराए। बोले, "राजन, कुशल मंगल तो है ? इतनी बड़ी सेना लेकर किस पर चढ़ाई करने जा रहे हो ?"

राजा ने उत्तर दिया, "हे तपस्वियों, ब्राह्मणों ने मुझसे कहा है कि तुम मुझ से भी अधिक बलशाली हो। मेरे जैसे अनेक योद्धाओं को युद्ध में हरा चुके हो, इसीलिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मुझसे युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ। यदि तुम मेरे पैरों पर सिर झुकाने को तैयार हो तो मैं बिना युद्ध किए ही लौट जाऊँगा। लेकिन यदि तुम ब्राह्मणों की बात का समर्थन करते हो तो मैं तुमसे युद्ध करूँगा।

नर-नारायण समझ गए कि यह राजा का अहंकार बोल रहा है। उन्होंने शान्त स्वर में कहा, "हम तो तपस्वी हैं, आत्मशुद्धि के लिए तप कर रहे हैं। हमें युद्ध से क्या मतलब, हमारे इस आश्रम में काम, क्रोध और लोभी किसी का प्रवेश नहीं है। यहाँ क्रूरता और कुटिलता की चर्चा भी नहीं होती। फिर तुम ऐसी बातें क्यों करते हो? इस धरती पर बहुत से वीर हैं। उनसे जाकर युद्ध करो। तपस्वियों का धर्म युद्ध करना नहीं है।"

लेकिन राजा के सिर पर तो अहंकार सवार था। वह बार-बार उन्हें युद्ध के लिए ललकारने लगा। कहने लगा, "या तो मेरे चरणों पर सिर रखकर मेरी अधीनता स्वीकार करो या मुझसे युद्ध करो।"

नर-नारायण ने फिर कहा, "हम ईश्वर की अधीनता स्वीकार कर चुके हैं। माया-मोह में फँसे हुए मनुष्यों का आधिपत्य हम कैसे स्वीकार कर सकते हैं। अहंकार के कारण तुम धर्म और सत्य को नहीं पहचान पा रहे हो। इस अहंकार को छोड़ दो।"

यह सुनकर राजा का अहंकार और भी उबल उठा। उसने अपनी सेना को आज्ञा दी, ''सैनिको, इन दोनों तपस्वियों पर बाणों की वर्षा करो।''

आज्ञा पाकर सैनिक आगे बढ़े और एक साथ असंख्य तीर बरसाने लगे। नर ने दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा। पास ही कुछ सेंठे खड़े थे। उन्हें उखाड़ा और अभिमन्त्रित करके सेना की ओर फेंका। देखते-ही-देखते उन सेंठों ने राजा की सेना के सभी बाणों को काट डाला और फिर उनमें से और भी असंख्य सेंठे फूट पड़े। राजा की आँख, नाक, कान मुँह सभी में वे भर गए।

नर के इस अस्त्र-प्रभाव को देखकर राजा घबरा उठे। उनकी साँस घुटने लगी और वे बेहोश होकर धरती पर गिर पड़े। सेना में भगदड़ मच गई। चारों ओर से सेंठों ने उन पर आक्रमण कर दिया। जिस समय राजा होश में आया, वह युद्ध-भूमि में अकेले ही पड़े हुए थे। एक भी सैनिक दिखाई नहीं दे रहा था। वे तुरन्त कातर होकर नर के चरणों में जा पड़े और पुकारने लगे, ''हे तपस्वियो,! ब्राह्मणों ने ठीक ही कहा था। तीनों लोकों में आपको कोई पराजित नहीं कर सकता। आपने मेरा गर्व चूर्ण कर दिया। सच है, अहंकार मनुष्य को अन्धा कर देता है। मैं आज आपके सामने शपथ खाता हूँ कि अब कभी अपनी शक्ति का गर्व नहीं करूँगा।''

नर ने शान्त स्वर में कहा, ''ठीक है राजन, अब कभी ब्राह्मणों और तपस्वियों का अनादर न करना। किसी पर भी आक्रमण न करना। दया और क्षमा को स्वीकार करते हुए शान्ति से अपनी प्रजा का पालन करना।''

राजा ने सब कुछ स्वीकार कर लिया और उन दोनों के चरण

छूकर जाने की आज्ञा माँगी।

दोनों तपस्वियों ने राजा को आशीर्वाद दिया। कहते हैं, उसके बाद राजा दम्भोद्भव ने कभी अहंकार नहीं किया।

# ज्ञान की विनय

प्राचीन काल में कौशाम्बी नाम की एक नगरी में सुप्रतिष्ठ नाम का एक परिव्राजक रहता था। वह सदा राजा के भोजन के समय भोजन करता था। उसने जल-स्तम्भन विद्या साध रखी थी, इसीलिए पद्मासन लगाए यमुना नदी के प्रवाह में कुशासन पर बैठा माला फेरा करता था।

एक बार विद्याधरों के राजा विद्युत्प्रभ अपनी पत्नी के साथ उधर आए। उनकी पत्नी ने सुप्रतिष्ठ को देखा तो बड़ी प्रभावित हुई। वह परिव्राजकों की परम भक्त थी। उसने अपने पति से कहा, "महाराज ! देखिए, माघ का महीना है, पानी के ज़रा से छींटें पड़ने पर आदमी काँप उठता है, लेकिन वह योगी यमुना के प्रवाह में योग की साधना कर रहा है।"

विद्युत्प्रभ ने उत्तर दिया, "प्रिये! यह दीन पुरुष क्या तप करेगा। इसका विद्या-बल भी कुछ नहीं है।"

यह सुन उसकी पत्नी को बड़ा क्रोध आया। वह आवेश में आ गयी। विद्युत्प्रभ यह देखकर हँस पड़े। बोले, "आओ, तुम्हें इसका तपोबल और विद्या-बल दिखाता हूँ।"

दोनों ने उसी समय डोम का रूप धारण किया और नदी के ऊपर जाकर एक दुर्गन्ध से भरे चमड़े को धोने लगे। यह

देखकर सुप्रतिष्ठ बड़ा क्रुद्ध हुआ, क्योंकि वह दुर्गन्ध से भर उठा था। वह और ऊपर जाकर बैठ गया। डोम फिर उससे आगे पहुँचे। संन्यासी अब तो क्रुद्ध हो उठा और गालियाँ सुनाता हुआ उस स्थान से भी आगे चला गया।

विद्युत्प्रभ की पत्नी अब सब कुछ समझ गयी, लेकिन अभी परीक्षा समाप्त नहीं हुई थी। यमुना के पास जाकर अपने तप के बल से उन दोनों ने एक बहुत ही सुन्दर और अद्भुत नगरी की रचना की। सुप्रतिष्ठ ने उस नगरी को देखा और यह भी देखा कि इन डोमों ने ही इस नगरी की रचना की है। वह तुरन्त उनके पास पहुँचा और बोला, "हे साधु ! मुझे यह नगर निर्माण करने वाली विद्या सिखला दो।"

डोम ने उत्तर दिया, "हम लोग डोम हैं और आप हैं ब्राह्मण। यदि आप हमें नमस्कार करें तो हम यह विद्या आपको सिखा सकते है। इसके अतिरिक्त जब कभी भी हम दिखाई दें, तो आपको हमें नमस्कार करना पड़ेगा।"

सुप्रतिष्ठ का मन खेद से भर उठा। एक ओर विद्या का प्रश्न था, दूसरी ओर डोमों को नमस्कार करने का। परन्तु, अन्त में उसने जैसा उन्होंने कहा था, डोमों को विधिवत् प्रणाम किया और विद्या की याचना की।

तुरन्त वह विद्या उसे सिद्ध हो गई। अब तो वह गर्व से भर कर राजा के पास पहुँचा और सब हाल उन्हें कह सुनाया। बोला, "मैं सत्य कह रहा हूँ आप आज समस्त अन्तःपुर और जनपदवासियों के साथ मेरे यहाँ भोजन करने आइए।"

राजा को अचरज हुआ। लेकिन वह ठीक समय पर बताए हुए स्थान पर पहुँचा। यह देखकर वह आश्चर्य से चकित रह गया कि सचमुच वहाँ एक बहुत ही सुन्दर नगर निर्मित हो गया

हैं। उसकी सुन्दरता का बखान नहीं किया जा सकता। वह जितना विशाल था, उतने ही उसमें नगरवासी थे और उतना ही धन-धान्य भी था।

सुप्रतिष्ठ ने बड़े आदर से सबको भोजन कराया। इसी समय वे दोनों डोम द्वार पर दिखाई दिए। लेकिन सुप्रतिष्ठ राजा के सामने उन्हें कैसे प्रणाम करता। नौकरों से कहकर उसने दोनों को बाहर निकलवा दिया। उसी क्षण सब कुछ समाप्त हो गया, रह गए केवल राजा, उनका परिवार, पुरजन और स्वयं सुप्रतिष्ठ। उसका मुँह काला पड़ गया। राजा ने चकित होकर उसकी ओर देखा और उसे सारा रहस्य राजा को बताना पड़ा।

राजा तुरन्त उन डोमों के पास पहुँचे और प्रणाम करके उस विद्या की याचना करने लगे। एक डोम ने राजा से कहा, ''जब हम लोग दिखाई दें, तभी आप हमको प्रणाम करें इस शर्त पर मैं आपको यह विद्या दे सकता हूँ।''

राजा ने यह शर्त स्वीकार की और डोमों ने वह विद्या राजा को दे दी। उस प्रदेश से निकलकर राजा ने उस विद्या के बल पर एक नए नगर का निर्माण किया। जिस समय वह नए राजभवन में पहुँचा तो दोनों डोम दरवाज़े पर उपस्थित थे। राजा ने तुरन्त भक्तिभाव से उनको प्रणाम किया और तीन बार उनकी प्रदक्षिणा की। राजा की ऐसी भक्ति और विनय देखकर विद्याधरों के राजा अपने असली रूप में प्रकट हो गए। बोले, ''राजन् ! मैं विद्युत्प्रभ नाम का विद्याधरों का राजा हूँ और यह मेरी पत्नी है। आपका विनय देखकर हमारा मन मुग्ध हो गया है।''

राजा ने अब तो गद्गद् होकर बारंबार उनकी पूजा की। बदले में विद्युत्प्रभ ने भी उन्हें दिव्य हार और कुण्डल भेंट किए। इस प्रकार विनय के अभाव में यह विद्या सुप्रतिष्ठ के पास न रह सकी, परन्तु राजा ने अपने विनय के कारण न केवल विद्या ही सीखी, बल्कि विद्याधरों से सम्मान भी पाया।

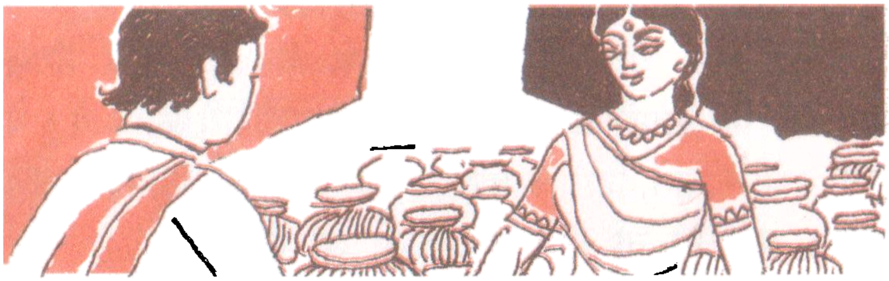

# ज्ञान का मान

बनारस के पास गंगा के किनारे पलाशकूट नाम का एक गाँव था। उसमें अशोक नाम का एक धनी जमींदार रहता था। उसकी पत्नी का नाम नन्दा था। वह अशोक की बड़ी प्रिय थी, लेकिन वह बन्ध्या थी। इसलिए कुछ दिन बाद अशोक ने उस राज्य के मन्त्री की लड़की सुनन्दा के साथ विवाह कर लिया। अशोक के पास अंसख्य गायें थीं। अनेक गोकुलों का वह नायक था, इसलिए सभी को वह प्रसन्न रखता था। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष वह राजा को एक हज़ार घड़े घी के देता था।

परन्तु सुनन्दा के आ जाने पर उसके घर में शान्ति नहीं रही। दोनों पत्नियाँ आपस में खूब लड़ती थीं। यह देखकर अशोक ने अपना समस्त गोधन दोनों में बराबर-बराबर बाँट दिया।

नन्दा बड़े प्यार से गायों का लालन-पालन करती थी। उनके खाने-पीने का ध्यान रखती। चरने के लिए जब वे वन में जातीं, तो स्वयं उन्हें गाँव से बाहर तक छोड़ने जाती और सन्ध्या को लेने आती। गिन-गिनकर प्रत्येक को संभालती, घर लाकर बाँधती और अच्छी तरह काटी गयी घास खिलाती। दाना भी देती। गायें भी उससे बहुत प्रसन्न थीं। खूब दूध देतीं। देखते-ही-देखते

उसके घर में दूध, दही और घी का भण्डार भर गया। यही नहीं, नन्दा चरवाहों के साथ भी बहुत अच्छा व्यवहार करती थी, उन्हें दूध, दही, घी, चबैना और लड्डू देती थी। जिससे वे जंगल में गायों की अच्छी तरह देखभाल करें। और वे करते थे। वे उन्हें वहीं ले जाते, जहाँ नरम-नरम दूब होती और पानी के झरने होते। इसीलिए तो गायें पुष्ट होती जा रही थीं।

इसके विपरीत सुनन्दा यौवन से उन्मत्त रहती थी। उसके स्वामी उससे बड़ा प्यार करते थे, इसलिए न तो वह गायों का सम्मान करती थी, न चरवाहों का। और न उसे घी-दूध की ही चिन्ता थी। गायें क्या खाती हैं, कब खाती हैं? जंगल में चरवाहे उनकी देखभाल करते हैं या नहीं, इस बात का उसे कभी ध्यान ही नहीं आता था। उसका जो-कुछ परिणाम हो सकता था, वही हुआ। गायें बहुत कम दूध देने लगीं। जो-कुछ थोड़ा-बहुत देती थीं, उसको चरवाहे स्वयं दुह कर पी जाते थे। यदि फिर भी थोड़ा बहुत बच रहता था, तो वह बर्तनों के साफ न होने के कारण खराब हो जाता था। जब दूध का यह हाल था तो घी कहाँ से होता। दही का कोई प्रश्न ही नहीं था। तो सुनन्दा का घर बिल्कुल ही रीता हो गया। ठीक भी है। जब तक किसी का आदर नहीं किया जाता, तब तक उसमें स्नेह कैसे उत्पन्न हो सकता है।

एक दिन अशोक ने सुनन्दा को बुलवाया और बड़े प्यारे से बोला, ''प्रिये ! आज हमें राजा के घर एक हजार घड़े घी के भेजने हैं। इसमें कमी नहीं हो सकती। इसलिए नियमानुसार तुम पाँच सौ घड़े मेरे पास भिजवा दो। शेष पाँच सौ घड़े नन्दा भेज देगी।'

यह सुनकर सुनन्दा मुस्करा उठी। बोली, ''आप पाँच सौ

घड़ों की बात करते हैं। मेरे घर में तो घी की एक भी बूंद नहीं है।''

अशोक को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन उसकी बातों से वह सब कुछ समझ गया। जहाँ गोधन का अपमान होता है, वहाँ दूध और घी कहाँ मिल सकते हैं। उसे बड़ी चिन्ता हुई। राजा को तो एक हजार घड़े पहुँचाने ही होंगे। उसी समय नन्दा वहाँ आई। सुनन्दा की स्थिति वह बहुत पहले ही भाँप गई थी। ग्वाले उसे सब कुछ बताते रहते थे। वह यह भी जानती थी कि राजा को एक हज़ार घी के घड़े देने होंगे। सदा देती रहती थी सो, उसने वे घड़े तैयार कर रखे थे। पति से बोली, ''मेरे

पास एक हज़ार घड़े तैयार हैं, उन्हें भिजवा दीजिए।''

अशोक को बहुत खुशी हुई। उसने राजा के पास वे घड़े भिजवा दिए। और साथ ही सुनन्दा के पास जितनी गायें थीं, वे भी मँगवाकर नन्दा को दे दीं। इतना ही नहीं, अपना सब-कुछ, यहाँ तक कि अपना जीवन भी उसने नन्दा को समर्पित कर दिया। सुनन्दा उसके मन से उतर गई और वह किसी प्रकार अपने जीवन का निर्वाह करती हुई एक कुटिया में रहने लगी। अब न उसके पास गायें थीं, न चरवाहे थे। उसने गोधन का अपमान किया था, इसीलिए अशोक ने उसे घर से बाहर निकला दिया था। नन्दा गायों, चरवाहों और बर्तनों का भली-भाँति सम्मान करती थी, इसीलिए अशोक ने उसका आदर किया। सन्तान-हीन होने पर भी वह उसे प्राणों से अधिक चाहने लगा।

इस प्रकार जो साधु ज्ञान का पर्याप्त सम्मान नहीं करता, वह दुस्सह मानसिक सन्ताप भोगता है और जो साधु भक्तिपर्वूक ज्ञान का सम्मान करता है, वह जिस प्रकार नन्दा बन्ध्या होकर भी पति की प्रिय हुई, उसी प्रकार वह देवताओं को प्रिय होता है।

❑❑❑

बाल-साहित्य

## देश-विदेश की सचित्र लोककथाएं

पड़ोसी देशों की लोककथाएं
पंजाब की लोककथाएं
हरियाणा की लोककथाएं (पुरस्कृत)
हिमाचल की लोककथाएं
राजस्थान की लोककथाएं
मध्यप्रदेश की लोककथाएं
उत्तर प्रदेश की लोककथाएं
जापान की लोककथाएं
अफ्रीका की लोककथाएं
गुजरात की लोककथाएं
बिहार की लोककथाएं
असम की लोककथाएं
बंगाल की लोककथाएं (पुरस्कृत)
केरल की लोककथाएं

## प्रेमचन्द की सरल, सचित्र बाल कहानियां

बूढ़ी काकी
बड़े घर की बेटी
सुजान भगत
परीक्षा
शतरंज के खिलाड़ी
दो बैलों की कथा
मां की ममता
शिकारी राजकुमार
गुल्ली-डण्डा
रानी सारंधा
नमक का दरोग़ा
रामलीला
पंच परमेश्वर
मन्दिर
ईद का त्यौहार
सब से बड़ा तीर्थ
कुत्ते की कहानी
मेरी कहानी
रामकथा
जंगल की कहानियां

## रवीन्द्रनाथ टैगोर की सरल बाल-कहानियां

भोला राजा
काबुलीवाला
पारसमणि
मास्टरजी
तोते की कहानी
राजा का न्याय

ISBN 81-7028-474-0

9 788170 284741

राजपाल